मैं, वर्धा हिंदी विश्वविद्यालय और गोरख पाण्डेय छात्रावास

आशुतोष श्रीवास्तव

तू मुझसे लाख दूरियां पैदा कर
मेरी भी जिद है
तुझे हर दुआ में मांगूगा... (तू,तुझे=लक्ष्य)

सिनेमा में रिसर्च के प्रति मेरी दीवानगी कहिये या फिर बेवकूफी जो मैंने दिल्ली सरकार में शिक्षा विभाग की लेक्चरर पद (पीजीटी) की कॉन्ट्रैक्ट बेस की नौकरी छोड़ परिवार व समाज के अनसुने ताने को सुनते हुए "महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय", वर्धा (महाराष्ट्र) के "नाट्य कला एवं फिल्म अध्ययन विभाग" में एम.फिल. (सिनेमा) में दाखिला लिया । आज के समय में जहां शिक्षा ग्रहण करने का एक मात्र और अंतिम ध्येय पैसे कमाना ही बनता जा रहा है। ऐसे में मेरा ये फैसला दोस्तों एवं परिवार में स्वाभाविक रूप से चौकाने वाला ही था । किन्तु करता भी क्या ? कमबख्त अब इश्क की आग ही ऐसी होती है जो बुझाये नहीं बुझती । सिनेमा के क्षेत्र में कुछ नया करने की यह आग निरंतर बढती ही जा रही थी जो परिवार व समाज के बातों की दमकलों से बुझने वाली नहीं थी । स्कूल के दिनों से उठी इस चिंगारी ने कब इतना बड़ा रूप ले लिया पता ही नहीं चला । शायद अब इसने अपनी दमित होती इच्छाओं को लेकर सबसे बात करना सीख लिया था । इसी का नतीजा रहा की मैं आज वर्धा में हूँ ।

दिल्ली से वर्धा तक का सफ़र भी अपने आप में कई सवालों को मन में घेरे हुए था । हंसराज कॉलेज से एम.ए. में प्रथम स्थान लेकर भी दो वर्षों तक लगातार लिखित परीक्षा पास कर इंटरव्यू में लगभग सारे प्रश्नों का जवाब देने के बावजूद भी एम.फिल. में दाखिला न होना आज भी मेरे लिए एक अनबूझ पहेली बनकर निरंतर दिमाग में कौंधती रहती है। वही दिल्ली के ही एक नामी विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. के इंटरव्यू में गुलज़ार को साहित्यकार न मानने वाली बात ने भी मुझे बहुत आश्चर्यचकित कर दिया था । इन विश्वविद्यालयों द्वारा प्राप्त इतने अच्छे अनुभवों ने ही मुझे दिल्ली छोड़ अन्य विश्वविद्यालयों की ओर रूख करने का मार्गदर्शन किया । उन दिनों मानों मुझे ऐसा लगता था की गुलाम अली, की यह ग़ज़ल 'चमकते चाँद को टूटा हुआ तारा बना डाला' मेरे लिए ही बनाई गई थी । अब किसका होता है, किसका नहीं होता है, और जिसका होता है तो उनका क्यों होता है, और जिनका नहीं होता है उनका क्यों नहीं होता है इसका जिक्र करना हंगामा खड़ा करना होगा । इस बात को सभी विद्यार्थी भी बखूबी समझ रहे होंगे । और फिर 'जल में रहकर मगर से बैर' करना भी तो कोई समझदारी नहीं ही है। खैर ये कहानी फिर सही । इसलिए 'पर्दे में रहने दो, पर्दा न उठाओ, पर्दा जो उठ गया तो भेद खुल जायेगा' और भेद खुल जायेगा तो प्रशासन आने वाले दिनों में 'गब्बर' बनकर 'अब तेरा क्या होगा कालिया' आदि संवादों के जरिये उनसे बात करें इससे अच्छा है साम्भा बन कर उनका गुणगान करते रहे । समझदार को इशारा ही काफी है ।

इधर तमाम ज़िद्दोजहद के बीच जब मुझे पता चला की वर्धा हिंदी विश्वविद्यालय में एम.फिल. (सिनेमा) के दाखिले की सूची में मेरा भी नाम है तो फिर क्या था, निकल पड़े अपने मंजिल की ओर चेन्नई एक्सप्रेस में सवार होकर, मन में सवालों की तमाम पोटली को लिए हुए ठीक अगले दिन बापू की कर्म भूमि 'सेवाग्राम' के रेलवे स्टेशन पहुंच गए फिर वहां ऑटो से 'गोरख पाण्डेय छात्रावास' जा धमके । ऑटो से उतरकर अपने कुछ सामानों के साथ जैसे ही मैंने छात्रावास में प्रवेश किया तो ठीक दायीं तरफ गोरख पाण्डेय जी की प्रतिमा देखी जिसका सर झुका कर अभिवादन करने के बाद आदतन अपने जिज्ञासा प्रवृति के कारण प्रतिमा के बारे में लिखी बातों को पढने के लिए आगे बढ़ा । फिर जैसे ही मुझे पता चला की ये भी मेरी तरह देवरिया से ही हैं तो मैंने भी ठीक वही किया जो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने पहली बार संसद में प्रवेश करते हुए किया

था । इससे पहले मैं पाण्डेय जी के बारे में केवल यही बात जानता था की ये एक कवि हैं और इनकी एक कविता "समझदारों का गीत" का अंग्रेजी अनुवाद हिंदी सिनेमा के महानायक 'अमिताभ बच्चन' जी द्वारा "The Song Of Sensible" शीर्षक के साथ किया गया है। इसी बीच मैंने एक बात नोटिस की, वहां मौजूद गार्ड व अन्य छात्र मेरी इस सारी घटना को बड़े कौतूहल भरे नज़रों से देख रहे थे। शायद कभी किसी ने भी ऐसी हरकत न की होगी। इससे पहले की और अधिक भीड़ इकट्ठी होती मैंने झट से अपना सामान उठाया और अपने मित्र के कमरे में चला गया जहां मुझे ठहरना था। कुछ दिनों तक तो मैं अपनी प्रतिमा वाली घटना के कारण छात्रावास में चर्चा का कारण बना रहा फिर एक अच्छे हिन्दुस्तानी की तरह सभी उस घटना को भूल गए और सबकुछ सामान्य हो गया।

फिर कुछ दिनों में एम.फिल. की कक्षाएं भी शुरू हो गयी। किंतु मेरा मन न जाने क्यों अब भी गोरख पाण्डेय जी के प्रतिमा के साथ ही कहीं विचरण कर रहा था, जो मुझे उनके बारे में और अधिक जानने के लिए उत्सुक भी कर रहा था। मैं उनकी प्रतिमा के साथ अपनी फोटो लेना चाहता था किन्तु फिर से कहीं चर्चा का विषय न बन जाऊं इसी संकोचवश ऐसे पल की तलाश में था जब थोड़ा एकांतपूर्ण वातावरण मिले । जल्द ही मुझे आख़िरकार वो मौका मिल ही गया जिसकी मुझे तलाश थी । तारीख थी 18 अगस्त, यह दिन मेरे लिए और भी खास इसलिए भी था कि इसी दिन हिंदी सिनेमा में 'शब्दों के जादूगर' एवं मेरे बेहद प्रिय गीतकार "गुलज़ार" जी का जन्म दिवस होता है। इसी के तहत मैंने अपने फेसबुक पर कलकत्ता से प्रकाशित हिमांशु जी द्वारा संपादित पुस्तक "भूमंडलीकरण और हिंदी सिनेमा" में में छपे लेख 'पर्सनल से सवाल करती हैं गुलज़ार के गीतों की भावनाएं' को पोस्ट किया था। जिसको लाइक करने में 'वीना भाटिया' मेम भी थी जिनका फोन नंबर मेरा सेलफोन चोरी होने के कारण गुम हो चुका था और स्पेलिंग मिस्टेक के कारण इधर मैं कई दिनों से इन्हें fb पर इन्हें ढूंढने में भी असफल रहा। फिर मैंने fb से नंबर लेकर अगले दिन ही शाम को करीब 6 बजे कुशल मंगल जानने हेतु और मार्गदर्शन की लालसा से उन्हें फोन किया । उनसे हुई वार्ता से पता चला की वो 'गोरख पाण्डेय' जी पर ही एक पुस्तक का संपादन कर रहीं हैं और जब उन्हें यह पता चला की मैं अब दिल्ली से वर्धा आ गया हूँ और उसी छात्रावास में रह रहा हूँ जिनके बारे में वो कुछ जानकारियां हासिल करना चाह रही थी तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । कारण स्पष्ट ही था । अब उनकी तलाश खत्म हो चुकी थी और मेरी शुरू । मेरे मन-मष्तिष्क में पाण्डेय जी को और करीब से जानने के लिए अब मुख्य और ठोस आधार मिल चुका था। मैं अब किसी न्यूज चैनल के पत्रकार की भांति पाण्डेय जी से संबंधित अन्य जानकारियों को एकत्र करने के लिए हर उस सख्स की तलाश में लग गया जिससे मुझे कुछ भी मिलने की आस थी। शुरुवात मैंने विश्वविद्यालय के कुलपति से की जिन्होंने मुझे बताया की मैं कुलसचिव जी से जाकर मिल लूं क्योकि पाण्डेय जी के बारे में उन्हें उतनी जानकारी नहीं हैं और फिर कुलसचिव जी पाण्डेय जी के रूम-मेट भी रह चुके है । सर को धन्यवाद देता हुआ मैं कुलसचिव जी से मिला, जहां उन्होंने बताया की वो साहित्य के विद्यार्थी थे और पाण्डेय जी मनोविज्ञान के इस कारण से उनसे उनकी वार्ता बहुत ही कम होती थी। बाकी के लिए मैं छात्रावास के उद्घाटन के दौरान अभिलेखों पर अंकित जानकारियों का प्रयोग करूँ। जिसका फोटो मैंने तभी ले लिया था जब पाण्डेय जी की प्रतिमा के साथ अपनी फोटो ली थी। सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए मेरी मुलाकात 'फादर कामिल बुल्के अंतरराष्ट्रीय छात्रावास' में ठहरे पत्रकारिता के क्षेत्र के विद्वान व प्रोफेसर 'अर्जुन तिवारी' जी से हुई जिन्होंने मुझे 'नागार्जुन सराय' में आवासीय तौर पर रह रहे विद्वान व लेखक 'अरुणेश नीरन' जी से मिलने की सलाह दी जिनकी जन्म धरती भी देवरिया ही है। नीरन सर के बारे में मैं यह बात जनता था की वे यहीं से निकलने वाली पत्रिका "भोजपुरी साहित्य" के संपादक हैं। नीरन सर से जब मेरी बात हुई तो उन्होंने बतलाया की पाण्डेय जी बनारस में शिक्षा अध्ययन के समय सहपाठी थे। कालेज के दिनों से ही पाण्डेय जी गीत और कवितायेँ खूब लिखा करते थे। उनकी रचनाओं में जनवादी विचारधारा स्पष्ट रूप से दिखती थी। इनके द्वारा लिखा गया एक कोरस गीत "समाजवाद बबुआ, धीरे धीरे आई" काफी लोकप्रिय हुआ। जिसे आज भी जनवादी मंचो से प्रायः कहीं न कहीं हमें सुनने को मिल ही जाता है। हाल ही में कुछ दिनों पहले ही मैंने इसी विश्वविद्यालय में छात्रों द्वारा किसी अन्यत्र घटना के

विरोध प्रदर्शन में गाते भी सुना था। फिर नीरन सर ने यह भी बतलाया की तात्कालिक देश की व्यवस्था से पाण्डेय जी बेहद क्षुब्ध रहा करते थे। इसी कारण से कई लोग यह भी मानते थे कि उनका झुकाव नक्सलवाद की तरफ होने था। नीरन सर के अनुसार पाण्डेय जी बेहद खुद्दार किस्म के इंसान थे। एक बार जब पाण्डेय जी आपातकाल के दौरान छिपे हुए रहते थे, जिनके रहने की जगह किसी को नहीं पता होती थी और वे अक्सर अपना हुलिया बदलकर रहा करते थे ऐसी स्थिति में पाण्डेय जी के श्वसुर ने नीरन सर को पाण्डेय जी को देने के कुछ रूपये दिए थे किन्तु खुद्दार किस्म के व्यक्तित्व ने आर्थिक स्थिति ख़राब होने के बावजूद उन्हें लेने से मना कर दिया था । मैंने सर से पूछा की सुना है पाण्डेय जी ने आत्महत्या कर ली थी। इस पर उन्होंने कहा की उनके जीवन में परिस्थितियां ही कुछ ऐसी बन गई थी । समाज में साथ रहते हुए भी एक तरह से उन्हें अलग-थलग कर दिया गया था । उनकी हर गतिविधियों पर निगरानी रखी जाती थी । भेदभावपूर्ण वातावरण उनके खिलाफ बन गया था। यहां तक की उनकी फेलोशिप भी रोक दी गई थी। आर्थिक स्थिति उनकी पहले से ही अच्छी नहीं थी और जीवन यापन करना बेहद कठिन होता जा रहा था। संभवतः इसी कारण उन्होंने ऐसा कठोर कदम उठाया होगा। इन सारी बातों के साथ ही सर ने यह भी बतलाया की इसी विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर विश्वविद्यालय की ही ई पत्रिका "हिंदी समय" पर उनके बारे में कुछ और जानकारियों को हासिल किया जा सकता है तथा उनकी रचनाओं को पढ़ा जा सकता है। सर से मिली इतनी अमूल्य जानकारियों को लेकर उन्हें धन्यवाद देता हुआ मै अपने कमरे पर आया और गोरख पाण्डेय जी (1945-1989) के बारे में बहुत कुछ पढ़ा। जनवादी सोच और सामाजिक हित को सर्वोपरि रखने वाले इस व्यक्तित्व से मैं काफी प्रभावित हुआ। इनकी सभी कवितायेँ और रचनाये प्रेरणाप्रद तो है ही साथ ही बहुत से सवालों को हमारे समक्ष उठाती भी हैं। जिसमें उनकी 'कुर्सीनामा' कविता मुझे बहुत अच्छी लगी। जो आज के सन्दर्भ में भी उतनी ही अधिक प्रासंगिक नज़र आती है जितनी की जब ये लिखी गई थी। जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं।।।

जब तक वह ज़मीन पर था
कुर्सी बुरी थी
जा बैठा जब कुर्सी पर वह
ज़मीन बुरी हो गई।।।
.....

कुर्सी की महिमा
बखानने का
यह एक थोथा प्रयास है
चिपकने वालों से पूछिये
कुर्सी भूगोल है
कुर्सी इतिहास है ।

ऐसे अमूल्य सामाजिक व साहित्यिक विचारों के धनी व्यक्तित्व को मेरा शत शत नमन । चूंकि सिनेमा में मेरी विशेष रूचि है इसलिए अगर संभव हो सका तो मैं इन पर एक डॉक्यूमेंट्री जरूर बनाउंगा जो इनके प्रति मेरी श्रधांजलि होगी ।

संपर्क : आशुतोष श्रीवास्तव, एम.फिल. (फिल्म एवं नाटक विभाग) – महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) ashucinema@gmail.com